''प्रकाशन के लिए अनुमोदित''

निर्णय सुरक्षित करने की तिथि – 01.10.2019

निर्णय सुनाने की तिथि – 23.10.2019

वाद : आवेदन अन्तर्गत धारा 482 क्रमांक संख्या – 36782/2019

प्रार्थी : तालिफ
प्रत्यर्थी : उत्तर प्रदेश सरकार व अन्य
याची की ओर से अधिवक्ता : अजय कुमार पाठक
प्रत्यर्थी की ओर से अधिवक्ता : पंकज कुमार व मुख्य स्थाई अधिवक्ता

माननीय सौरभ श्याम शमशेरी, न्यायमूर्ति

1. प्रार्थी ने वर्तमान आवेदन जो दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के अंतर्गत दायर किया है, के द्वारा इस न्यायालय से प्रार्थना की है कि, पारस्परिक समझौते के आधार पर अशमनीय अपराधो का शमन करके, प्राथमिकी सं0 918/2018 थाना कोतवाली, जिला हाथरस, अंतर्गत धारा 354 भारतीय दंड संहिता व धारा 7 एवं 8 लैगिंग अपराधो से बालको का संरक्षण अधिनियम 2012 (संक्षिप्त में 'अधिनियम 2012') के अंतर्गत समस्त दाण्डिक कार्यवाही (आरोप पत्र दिनांक 12.01.2019 व सत्र परीक्षण 13/2019 मे पारित प्रसंज्ञान आदेश दि0 07.02.2019) जो अतिरिक्त जिला व सत्र न्यायाधीश, कोर्ट सं0 1, हाथरस मे विचाराधीन है को निरस्त करे।

2. आवेदन में वर्णित तथ्य जैसा प्राथमिकी जो प्रथ्यार्थी क्रमांक संख्या 2 में दर्ज करायी थी, इस प्रकार है।

''प्रार्थी जमील पुत्र मोहम्मद खां निवासी ब्लाक नं0–72 काशीराम कालोनी थाना कोतवाली नगर हाथरस में मय परिवार के रह रहा हूं। दिनांक 09.11.18 को समय लगभग 11:30 बजे मेरी पुत्री नेहा उम्र लगभग 13 वर्ष मेरे मकान के बाहर छज्जे पर खड़ी थी तभी मेरे पड़ोस में रहने वाला तालिफ पुत्र पप्पू निवासी ब्लाक नं0–72 काशीराम कालोनी मेरी लड़की के पास आया और उसके साथ अश्लील हरकत करने लगा मेरी पुत्री ने मुझे आवाज लगाई मै बाहर आया तब तक तालिफ वहां से भाग गया था मैने भागते हुए देखा। महोदय से निवेदन है कि मेरी रिपोर्ट लिखकर कानूनी कार्यवाही करने की कृपा करें।''

3. उपरोक्त प्राथमिकी पर अनुसंधान हुआ जिसमे पीड़िता का बयान धारा 164 दां प्र सं के अंतर्गत अभिलेखित किया गया जो निम्न है।

''बयान अन्तर्गत धारा 164 द.प्र.सं. :– ''मै पढ़ी लिखी नही हूं घटना 09.11.18 की है रात का 11:00 से 11:30 बजे था उस समय मै छज्जे पर खड़ी थी मैने अपनी बहन व भाई का स्कूल ड्रेस धोये थे उसे उठाने के लिए गई थी तालिव नाम का लड़का अपने छज्जे से उतर कर आ रहा था वह हमारे घर के अन्दर रहता है। उसने मेरा हाथ भी पकड़ा और छेड़छाड़ की मैने पापा को आवाज मारी तो वह भाग गया।''

4. अन्तः आरोप पत्र दिनॉक 13.01.2019, धारा 354 भा.द.सं. व धारा 7/8 'अधिनियम 2012' के अन्तर्गत प्रार्थी के विरूद्ध दाखिल किया गया। जिस पर जिला एवं सत्र न्यायालय हाथरस, ने दि0 07.02.2019 को प्रसंज्ञान लिया। सत्र न्यायालय के अभिलेख जो

प्रार्थी ने अनुसंलग्नक सं0 6 के अंतर्गत आवेदन के साथ लगाये है, से विदित है कि प्रार्थी (अपराधी) के विरूद्ध गैर जमानती वांरट प्रेषित किया जा चुका है।

5. प्रार्थी ने इस आवेदन के साथ एक समझौता (अनुलग्नक संख्या 7) जो एक आवेदन के रूप में है संलग्न किया है, जिसमे वर्णित है किः—

''न्यायालय श्रीमान् अपर सत्र न्यायाधीश कोर्ट सं0 प्रथम हाथरस

एस0टी0 सं0—13/2019

राज्य बनाम् तालिफ

धारा — 354 I.P.C. व 7/8 पॉस्को एक्ट

थाना — कोतवाली हाथरस

श्रीमान् जी,

निवेदन कि प्रार्थी उपरोक्त मुकद्दमा में वादी है और प्रार्थी का उपरोक्त मुकद्दमा में अब विपक्षी (मुल्जिम पक्ष) से मौहल्ले व समाज के संभ्रान्त व्यक्तियों द्वारा अब समझौता करा दिया गया है, अब हम दोनों पक्षों में कोई विवाद शेष नहीं रहा है। उपरोक्त मुकद्दमा व्यक्तिगत प्रकृति का है जिससे समाज का कोई लेना—देना नहीं है। अब मैं और मेरी पुत्री आगे कोई पैरवी करना नहीं चाहते है, ऐसी स्थिति में उपरोक्त मुकद्दमा को समाप्त किया जाना न्यायहित में आवश्यक है।

अतः श्रीमान् जी से प्रार्थना है कि मेरे एवं मेरी पुत्री द्वारा दाखिल समझौतानामा पत्रावली पर लिया जावे एवं समझौते के आधार पर उपरोक्त मुकद्दमा निस्तारित किया जावे।

दिनांकः–

विपक्षी

ह0 तालिफ

वादी

ह0 जमील

1. जमील पुत्र मौहम्मद खान,

ह0 नेहा

2. नेहा पुत्री जमील

निवासीगण–ब्लॉक 72, काशीराम कॉलोनी,

थाना–कोतवाली हाथरस, जिला–हाथरस।''

इस समझौते पर अभियुक्त (प्रार्थी), पीड़िता के पिता (प्रथ्यार्थी क्रमॉक सं0 2) व पीड़िता के हस्ताक्षर है।

6. प्रथ्यार्थी क्रमांक 2 ने अल्प जवाबी हल्फनामा दाखिल किया है, जिसके द्वारा उपरोक्त वर्णित समझौते की पुष्टि की है, व कहा है कि उपरोक्त समझौता बिना किसी दबाव से लिया गया है। प्रथ्यार्थी क्रमांक 2 ने आवेदन में की गयी प्रार्थना का भी समर्थन किया है।

7. प्रार्थी व प्रत्यार्थी क्रमांक 2 के विद्वान अधिवक्ताओ ने निवेदन किया की दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत इस न्यायालय को वो अन्तनिहित शक्ति प्राप्त है, जिसके द्वारा न्याय के उद्देश्यो की प्राप्ति को सुनिश्चित करने लिए कुछ आपराधिक मामलों मे पारस्परिक समझौते के आधार पर अशमनीय अपराधो का भी शमन किया जा सकता है एवं समस्त दाण्डिक कार्यवाही को निरस्त किया जा सकता है। वर्तमान तथ्यो व परिस्थितियों मे उक्त शक्ति का प्रयोग किया

जाना न्यायसंगत होगा।

8. इसके विपरीत उत्तर प्रदेश के स्थाई अधिवक्ता ने इस न्यायालय के सामने कथन किया कि वर्तमान मामले के तथ्यों व परिस्थितियो मे जहाँ अभियुक्त के खिलाफ गंभीर आरोप है, इस न्यायालय द्वारा उसकी अंतनिहित शक्तियो का प्रयोग नही करना चाहिये। दांडिक कार्यवाही को पूर्ण हो जाने देना चाहिये तथा दाण्डिक प्रक्रिया को अचानक शिथिल नही करना चाहिये।

9. प्रार्थी, अप्रार्थी नं0 1 व 2 के विद्वान अधिवक्ता को सुना व आवेदन व आवेदन के संलग्नो का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया। प्रार्थी व अप्रार्थी के अधिवक्ताओं की सहमति से वर्तमान आवेदन पर अंतिम निर्णय इस आवेदन की वर्तमान स्तर पर ही लिया जा रहा है।

10. वर्तमान वाद में यह निर्णीत करना है कि ''क्या वर्तमान वाद के तथ्यों व परिस्थितयो को ध्यान में रखते हुए पारस्परिक समझौते के आधार पर अशमनीय अपराधो का शमन करके, समस्त दांडिक कार्यवाही का निरस्तीकरण, धारा 482 द.प्र.सं. द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अंतर्गत किया जाना न्यायोचित होगा ?

11. इस विधिक विषय का निर्धारण करने लिए यह देखना आवश्यक की इस विषय पर कानूनी स्थिति क्या है। इस विषय पर उच्चतम न्यायालय द्वारा हाल में दिया गया निर्णय (मध्य प्रदेश शासन बनाम लक्ष्मी नारायण और अन्य आपराधिक अपील सं0 349/2019 निर्णय दि0 5 मार्च 2019 जो 2019 (5) एस.सी.सी. 688 में प्रकाशित भी है।) का उल्लेख करना प्रासंगिक व उपयुक्त है। इस निर्णय के प्रमुख अंश निम्न है (स्त्रोत *https: /sci.gov.in/supremecourt_vernacular2014/*

22779/2277920142150612987judgement05-Mar-2019HIN pdf)

"9. आरंभ मे यह ध्यान देना आवश्यक है कि वर्तमान मामले मे उच्च न्यायालय ने द.प्र.सं. की धारा 482 की अपनी शक्तियों का उपयोग करते हुए केवल फरियादी एवं अभियुक्त के मध्य समझौता हो जाने के आधार पर धारा 307 और 34 भा.द.सं. के तहत अपराधों की प्रथम सूचना रिपोर्ट को रद्द किया है। कि समझौते को ध्यान मे रखते हुए और फरियादी द्वारा लिये गये पक्ष, इस न्यायालय के शिजी के मामले के निर्णय पर विचार करते हुए, उच्च न्यायालय का मानना है कि आरोपीगण के विरूद्ध दोषसिद्धी करने का कोई अवसर नहीं है और सम्पूर्ण विचारण करना निरर्थक होगा, उच्च न्यायालय ने एफ.आई.आर. को रद्द किया है।

9.1 यद्यपि, उच्च न्यायालय ने इस तथ्य पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया है कि अभिकथित अपराध धारा 320 द.प्र.सं. के अनुसार अशमनीय थे। आलोच्य निर्णय से ऐसा प्रतित होता है कि उच्च न्यायालय ने सुसंगत तथ्यों तथा मामले की परिस्थितियो जिसमें विशेष रूप से अपराधों की गंभीरता और इसके सामाजिक प्रभाव पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया है। उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश और आलोच्य निर्णय से ऐसा प्रतित होता है कि उच्च न्यायालय ने धारा 482 द.प्र.सं. के अंर्तगत शक्तियों के प्रयोग में एफ.आई.आर. को यंत्रिक रूप से रद्द किया है। उच्च न्यायालय ने व्यक्तिगत और निजी दोष के बीच अंतर तथा सामाजिक दोष और सामाजिक प्रभाव पर बिल्कुल भी विचार नहीं किया है। जैसा कि इस न्यायालय ने महाराष्ट राज्य बनाम विक्रम अनंतराय दोशी, (2014) 15 एस.सी.सी. 29, इस मामले में अवलोकन किया, धारा 482 द.प्र.सं. के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग करते हुए आपराधिक कार्यवाहीयों को रद्द करते हुए न्यायालय का प्रमुख कर्तव्य होना चाहिए कि वह सारे तथ्यों का विश्लेषण कर अरोपो के रूझान और समझौता के मर्म का पता करे। जैसा कि देखा गया है, यह न्यायाधीश का अनुभव है जो उसकी सहायता के लिए आता है और उक्त अनुभव का उपयोग सावधानी, सतर्कता, एहतियात और साहसी विवेक के साथ करना चाहिए। वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय ने उचित परिप्रेक्ष्य में सभी तथ्यों का विश्लेषण करने का तनिक भी कष्ट नहीं किया है और आपराधिक कार्यवाहियां यांत्रिक रूप से रद्द कर दी है। यहां तक कि वर्तमान मामले में उच्च न्यायालय द्वारा धारा 482 द.प्र.सं. के तहत शक्तियों का प्रयोग करना और धारा 307 तथा 34 भा.द.सं. के तहत दण्डनीय अपराध की एफ.आई.आर. को रद्द करना, एक प्रकार से इस न्यायालय के निर्णयो द्वारा प्रतिपादित विधि के प्रतिकूल है।

9.2 ज्ञान सिंह (उपरोक्त) मामले के खण्ड–61 में इस न्यायालय ने महसूस किया और निम्न अनुसार प्रतिपादित किया :–

''61. उपरोक्त चर्चा से जो स्थिति बनती है उसे इस प्रकार संक्षेप में प्रस्तुत किया जा सकता है : उच्च न्यायालय को आपराधिक कार्यवाही या एफ.आई.आर. या परिवाद को रद्द करने की शक्तियां अपनी अंर्तनिहित क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए और आपराधिक न्यायालय को दी गई धारा 320 के तहत अपराध को शमन करने की शक्ति से भिन्न है। अंर्तनिहित शक्तियां व्यापक स्तर पर बिना किसी वैधानिक सीमा के साथ होती है लेकिन इस शक्ति को पैवंद दिशा निर्देशों के अनुसार ऐसे प्रयोग करना चाहिए : (i) न्याय के हितों की सुरक्षा हेतु, या (ii) किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरूपयोग को रोकने हेतु। किन मामलो में आपराधिक कार्यवाही या परिवाद या एफ.आई.आर. को रद्द करने की शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है, जहां अपराधी और पीड़ित ने अपना विवाद सुलझा लिया है, यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा और कोई श्रेणी विहित नहीं की जा सकती है। यद्यपि, इस प्रकार की शक्ति का प्रयोग करने से पहले उच्च न्यायालय को अपराध की प्रकृति और गंभीरता के बारे में यथोचित ध्यान होना ही चाहिए। जघन्य और मानसिक अवसाद के गंभीर अपराधों या हत्या, बलात्कार, डकैती इत्यादि जैसे अपराधों को रद्द नही किया जा सकता है यहां तक कि पीड़ित या पीड़िता के परिवार और अभियुक्त ने विवाद को सुलझा लिया है। इस प्रकार के अपराध प्रकृति में निजी नही है और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते है। इसी प्रकार, पीड़िता और अपराधी के बीच विशेष कानून के तहत अपराधों के संबंध में कोई समझौता जैसे कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम या उस क्षमता में काम करते समय लोक सेवकों द्वारा किए गए अपराधे आदि; ऐसे अपराधों को शामिल करने वाली आपराधिक कार्यवाही को रोकने के लिए कोई आधार प्रदान नहीं कर सकता है। लेकिन आपराधिक मामलों में बड़े पैमाने पर और पूर्वव्यापी दीवानी प्रकृति से खारिजी के उद्देश्यो के लिए अलग–अलग आधार पर खड़े होते है, विशेष रूप से वाणिज्यिक, वित्तीय, व्यापारिक, दीवानी, साझेदारी या इस तरह के सम्यव्यवहार या दहेज संबंधित वैवाहिक आदि संबंधित से उत्पन्न अपराधों या पारिवारिक विवाद जहां मूल रूप से दोष व्यक्तिगत या निजी प्रकृति का है और पक्षकारों ने अपने संपूर्ण मामले को हल कर लिया है। इस श्रेणी के मामलों में, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द कर सकता है यदि उसके विचार में, अपराधी और पीड़ित के बीच समझौता होने के कारण, दोषी होने की संभावना दूरस्थ और धूमिल है और आपराधिक मामलों की निरंतरता अभियुक्त को गंभीर उत्पीड़न और प्रतिकूलता में डालेगी और पीड़ित के साथ समझौता पूर्ण और सम्पूर्ण निपटारा होते हुए भी आपराधिक मामले को रद्द न करके उसके साथ गंभीर अन्याय कारित होगा। दूसरे शब्दों में, उच्च न्यायालय को इस बात पर विचार अवश्य करना चाहिए कि

क्या यह न्याय के हित के लिए अनुचित या न्यायसंगत होगा या आपराधिक कार्यवाही जारी रखने के लिए या पीड़ित तथा दोषकर्ता के बीच समझौता होने के बावजूद आपराधिक कार्यवाही जारी रखने से कानून की प्रक्रिया का दुरूपयोग होगा और क्या न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने हेतु, यह उचित है कि आपराधिक मामले को समाप्त कर दिया जाए और यदि उपरोक्त प्रश्न का उत्तर सकारात्मक है, तो उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के अपने क्षेत्र अधिकार मे होगा।

9.3 ज्ञान सिंह (उपरोक्त), के मामले के निर्णय के विचार करने के बाद नरेंद्र सिंह बनाम पंजाब राज्य (2014) 6 एस. सी.सी. 466 के मामले के पैराग्राफ 29 में, इस न्यायालय ने निम्न रूप से अभिव्यक्त किया :

''29 उपरोक्त चर्चा को दृष्टिगत रखते हुए, हम सरांशता और निम्नलिखित सिद्धांतों को प्रतिपादित करते है जिसके द्व ारा उच्च न्यायालय को मार्गदर्शित किया जाएगा पक्षकारों के मध्य हुए समझौते को उचित उपचार देने में और धारा 482 द.प्र.सं. के अंतर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए कार्यवाही को रद्द करते हुए और समझौते को स्वीकार करते हुए या समझौते को मानने से इनकार करते हुए आपराधिक कार्यवाहियों के जारी रहने का निर्देश देगा।

29.1 द.प्र.सं. की धारा 482 के तहत प्रदत्त शक्ति को उस शक्ति से अलग किया जाना चाहिए जो न्यायालय को संहिता की धारा 320 के अंर्तगत अपराधों के शमन करने के लिए दी जाती है। निसंदेह संहिता की धारा 482 के अंर्तगत उच्च न्यायालय को उन मामलों में भी आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द करने की अंर्तनिहित शक्ति है जो शमनीय नहीं हैं, जहां पक्षकारों ने आपस में मामला सुलझा लिया है। हालांकि, इस शक्ति का प्रयोग संयम से और सावधानी के साथ किया जाना है।

29.2 जब पक्षकार निपटारे पर पहुंच गए हैं और उस आधार पर आपराधिक कार्यवाहीको रद्द करने के लिए याचिका दायर की जाती है, तो ऐसे मामलों में मार्गदर्शक कारक (i) न्याय के उद्देश्य की पूर्ति के लिए या (ii) किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया का दुरूपयोग रोकने के लिए को सुरक्षित करना होगा।

उच्च न्यायालय को अपनी शक्ति का प्रयोग करते समय पूर्वोक्त दो उद्देश्यों में से किसी एक पर राय बनानी होती है।

29.3 ऐसी शक्ति का उन अभियोगों में प्रयोग नहीं किया जाना है जिनमें जघन्य और मानसिक अवसाद के गंभीर अपराध या अपराध जैसे हत्या, बलात्कार, डकैती इत्यादि शामिल हैं। ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं है और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते है। इसी प्रकार विशेष कानून के तहत कारित किये गए अभिकथित अपराध जैसे कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम या उस क्षमता में काम करते समय लोक

सेवकों द्वारा किए गए अपराध मात्र इस आधार पर रद्द नहीं किये जाने है कि पीड़ित और अपराधी के बीच कोई समझौता हो गया है।

29.4 दूसरी तरफ, उन आपराधिक मामलों में जो बड़े पैमाने पर और पूर्वव्यापी दीवानी प्रकृति के होते है, विशेष रूप से वे जो वाणिज्यिक संव्यवहार से उत्पन्न होते है या वैवाहिक संबंध से उत्पन्न होते है, या पारिवारिक विवादों को समाप्त किया जाना चाहिए, जब पक्षकारों ने अपने विवाद को आपस में खुद से हल कर लिया हो।

29.5 अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय को इस बात की जांच करनी है कि क्या दोषसिद्धि की संभावना दूरस्थ और धूमिल है और आपराधिक मामलों की निरंतरता अभियुक्तों को बहुत उत्पीड़न और पक्षपात में डालेगी और आपराधिक मामलों को समाप्त नहीं करने से उसके साथ अत्यधिक अन्याय होगा।

29.6 भा.द.सं. की धारा 307 के तहत अपराध जघन्य और गंभीर अपराधों की श्रेणी में आयेगें और इसलिए इन्हें आमतौर पर समाज के विरूद्ध अपराध माना जाता है और न कि केवल अकेले व्यक्ति के विरूद्ध। हांलाकि उच्च न्यायालय अपने निर्णय को केवल इसलिए बहाल नही करेगा क्योंकि एफ.आई.आर. में धारा 307 भा.द.सं. का उल्लेख है या इस प्रावधान के तहत आरोप तय किया गया है। उच्च न्यायालय को यह परीक्षण करने के लिए खुला रहेगा कि क्या धारा 307 भा.द.सं. को मात्र इसमें शामिल करने के लिए या अभियोजन पक्ष ने पर्याप्त साक्ष्य एकत्र किये है, जो यदि साबित हुआ, को धारा 307 भा.द.सं. के तहत आरोप साबित करने के लिए प्रेरित करेगा। इस प्रयोजन के लिए, उच्च न्यायालय को यह खुला रहेगा, चोट लगने की प्रकृति के साथ जाए क्या इस तरह की चोट शरीर के महत्वपूर्ण/प्रतिनिधि भागों पर कारित की गई हैं, हथियारों की प्रकृति जो इस्तेमाल किये गये है, पीड़ित को कारित चोटों के संबंध में चिकित्सीय रिपोर्ट सामान्यतः मार्गदर्शक कारक हो सकते है। इस प्रथम दृष्टया विश्लेषण के आधार पर, उच्च न्यायालय इस बात की जांच कर सकता है कि क्या दोषी ठहराए जाने की प्रबल संभावना है या दोषी ठहराए जाने की संभावनाए दुरस्थ और धूमिल है। पूर्व मामले में यह निपटारे को स्वीकार करने से इनकार कर सकता है और आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द कर सकता है जबकि बाद के मामले में उच्च न्यायालय के लिए पक्षकारों के बीच पूर्ण निपटारा अभिवाक् समझौते पर आधारित अपराध को स्वीकार करने के लिए यह स्वीकार्य होगा। इस स्तर पर, न्यायालय को इस तथ्य से भी प्रभावित किया जा सकता है कि पक्षकारों के बीच समझौता करने से उनके बीच सदभाव हो सकता है जिससे उनके भविष्य के रिश्ते में सुधार हो सकता है।

29.7 संहिता की धारा 482 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करना है या नही, यह तय करते समय निपटारे की

समय–सीमा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जिन मामलों का निपटारा कथित अपराध के तुरन्त बाद हो जाता है और मामला अन्वेषणाधीन है, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही/जांच को रद्द करने के लिए समझौता स्वीकार करने में उदार हो सकता है। यह इस कारण से है कि इस स्तर पर जांच अभी भी जारी है और यहां तक की चार्जशीट भी पेश नहीं की गई है। इसी तरह, उन मामलों में जहां आरोप लगाया गया है लेकिन साक्ष्य को शुरू करना अभी बाकी है या साक्ष्य अभी भी प्रारंभिक अवस्था में है, उच्च न्यायालय अपनी शक्तियों को अनुकूल तरीके से उपयोग करने में उदारता दिखा सकता है, लेकिन ऊपर उल्लेखित परिस्थितियों/साम्रगी का प्रथम दृष्टया मूल्यांकन करने के बाद। दूसरी ओर, जहां अभियोजन साक्ष्य लगभग पूर्ण हैं या प्रकरण साक्ष्य के निष्कर्ष के बाद तर्क की अवस्था पर है, आमतौर पर उच्च न्यायालय को संहिता की धारा 482 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करने से बचना चाहिए, जैसा कि ऐसे मामलों में विचारण न्यायालय मामले को गुणागूण पर निर्णित करने की स्थिति में होगा और इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या धारा 307 के तहत अपराध किया गया है या नहीं। इसी तरह, उन मामलों में जहां दोषसिद्धि विचारण न्यायालय द्वारा पहले से ही दर्ज की जाती है और मामला उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की अवस्था पर है, केवल पक्षकारों के बीच समझौता एक ही आधार को स्वीकार करने का आधार नहीं होगा जिसके परिणाम स्वरूप अपराधी को दोषमुक्त किया जायेगा जो कि विचारण न्यायालय द्वारा पहले से ही दोषसिद्ध किया गया है। यहां धारा 307 भा.द.सं. के तहत आरोप साबित हो जाता है और दोषसिद्धि पहले से ही जघन्य अपराध के रूप में दर्ज की जाती है और इसलिए, इस तरह के अपराध के लिए दोषी पाए गए अपराधी को बख्शने का कोई सवाल ही नहीं है।

9.4 परबतभाई अहीर (उपरोक्त) के मामले में, न्यायालय के पास फिर से इस पर विचार करने का अवसर है कि क्या उच्च न्यायालय द.प्र.सं. की धारा 482 के तहत अंर्तनिहित क्षेत्राधिकार के उपयोग में एफ.आई.आर./परिवाद/आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द कर सकता है, इस बिंदु पर इस न्यायालय के निर्णयों की श्रृखंला पर विचार करते हुए, इस न्यायालय ने निम्नलिखित प्रस्तावों को संक्षेप में प्रस्तुत किया :

1. द.प्र.सं. की धारा 482 उच्च न्यायालय की अंर्तनिहित शक्तियों को संरक्षित करता है कि किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया का दुरूपयोग रोकने के लिए या न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए। यह प्रावधान नई शक्तियों को प्रदान नहीं करता है। यह केवल उन शक्तियों को मान्यता देता है और संरक्षित करता है जो उच्च न्यायालय में अंर्तनिहित है।

2. उच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार का आह्वान प्रथम सूचना रिपोर्ट या आपराधिक कार्यवाही को इस आधार पर

रद्द करने के लिए कि अपराधी और पीड़ित के बीच समझौता हो गया है, एक समान नहीं है जहां क्षेत्राधिकार का आह्वान अपराध के शमन करने के उद्देश्य से किया जाता है। अपराध का शमन करते समय, न्यायालय की शक्ति द.प्र. सं. की धारा 320 के प्रावधानों के द्वारा शासित होती है। धारा 482 के तहत रद्द करने की शक्ति आर्कषित होती है चाहे अपराध अशमनीय हो।

3. एक राय बनाने में कि क्या धारा 482 द.प्र.सं. के तहत अपने अधिकार क्षेत्र के उपयोग में एक आपराधिक कार्यवाही या परिवाद को रद्द किया जाना चाहिए, उच्च न्यायालय को यह मूल्याकंन करना चाहिए कि क्या न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति में निहित शक्ति का प्रयोग किया जाना उचित होगा।

4. जबकि उच्च न्यायालय की अंर्तनिहित शक्ति की व्यापक परिधि और पूर्णता है, उसे प्रयोग करने की आवश्यकता है (i) न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए, या (ii) किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरूपयोग को रोकने के लिए।

5. इस निर्णय में कि क्या परिवाद या प्रथम सूचना रिपोर्ट को इस आधार पर खारिज किया जाना चाहिए कि अपराधी और पीड़ित ने विवाद को निपटा लिया है, अंततः प्रत्येक मामला उसके तथ्यों और परिस्थितियों पर घुमता है और सिद्धांतों का कोई विस्तृत विस्तार तैयार नही किया जा सकता है।

6. धारा 482 के तहत शक्ति के प्रयोग में और इस अभिवाक् से निपटाने के दौरान कि विवाद सुलझा लिया गया है, उच्च न्यायालय को अपराध की प्रकृति और गंभीरता का सम्यक ध्यान रखना चाहिए। जघन्य और गंभीर अपराधों जिनमें मानसिक अवसाद या अपराध जैसे हत्या, बलात्कार, डकैती शामिल है को उचित रूप से समाप्त नहीं किया जा सकता यद्यपि पीड़ित या पीड़ित के परिवार ने विवाद को सुलझा लिया है। ऐसे अपराध वास्तव में निजी प्रकृति के नहीं है बल्कि समाज पर गंभीर प्रभाव डालते है ऐसे मामलों में मुकदमें को जारी रखने का निर्णय गंभीर अपराधों के लिए व्यक्तियों को दण्डित करने में लोगहित के अविरोही तत्व पर स्थापित किया गया है।

7. गंभीर अपराधों से अलग, ऐसे अपराधिक मामले हो सकते है जिनमें किसी सिविल विवाद का भारी या प्रमुख तत्व होता है। जहां तक कि रद्द करने की अंर्तनिहित शक्ति के प्रयोग से संबंधित है, वे अलग–अलग पायदान पर खड़े होते है।

8. आपराधिक मामले जो वाणिज्यिक, वित्तीय, व्यापारिक, साझेदारी या समान संव्यवहार जो अनिवार्य रूप से सिविल प्रकृति के साथ उत्पन्न होते है, वे रद्द करने के लिए उपयुक्त परिस्थितियों में आ सकते है जहां पक्षकारो ने विवाद सुलझा लिया हो।

9. ऐसे मामले में उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही को रद्द कर सकता है यदि विवादियो के बीच समझौते को ध्यान में रखते हुए, दोषसिद्धि की संभावना काफी दुरस्थ है और आपराधिक कार्यवाही की निरंतरता उत्पीड़न और प्रतिकूलता कारित करेगा; और

10. उपरोक्त प्रस्ताव 8 और 9 में निर्धारित सिद्धांत का एक अपवाद है। आर्थिक अपराधो में राज्य का आर्थिक और वित्तीय हित निहित होता है जो कि निजी विवादियों के बीच मामले की परिधि से परे प्रभाव होता है। उच्च न्यायालय के लिए कार्यवाही को रद्द करने से मना करना उचित होगा जहां अभियुक्त वित्तीय या आर्थिक कपट या कदाचार से संबंधित गतिविधि में लिप्त है। शिकायत किये गए कृत्य के परिणाम को वित्तीय या आर्थिक प्रणाली के संतुलन में तोलना होगा।

9.5 मनीष (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय ने विशेष रूप से अवलोकन और अभिनिर्धारित किया कि, जब धारा 307, 294 और 34 भा.द.सं. के अर्न्तगत अपराध (जैसा कि अपील @ एस.एल.पी. (आप.) क्रमांक 9859/2013) सहित धारा 25 और 27 आयुध अधिनियम (जैसा कि अपील @ एस.एल.पी. (आप.) क्रमांक 9860/2013) के शमन का प्रश्न आता है, बिना किसी कल्पना के, क्या इसे निजी पक्षकारों के बीच एक समान्य अपराध माना जा सकता है। यह महसूस किया गया है कि ऐसे अपराधों का समाज पर बड़े पैमाने पर गंभीर प्रभाव पड़ेगा। आगे यह भी महसूस किया गया है कि जहां अभियुक्तगण धारा 307, 294 सहपठित धारा 34 भा.द.सं. के साथ–साथ आयुध अधिनियम की धारा 25 और 27 के अंर्तगत विचारण का सामना कर रहे हो चूंकि अपराध निश्चित रूप से समाज के विरूद्ध है, अभियुक्तों को आवश्यक रूप से विचारण का सामना करना पड़ेगा और अपनी पूरी बेगुनाही साबित करके बाहर आना होगा।

9.6 दीपक (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय ने विशेष रूप से महसूस किया कि धारा 307 भा.द.सं. के तहत अशमनीय अपराध है और धारा 307 के तहत अपराध पक्षकारों के बीच परस्पर एक निजी विवाद नहीं है किंतु समाज के विरूद्ध एक अपराध है, एक समझौते के आधार पर कार्यवाहीं को रद्द करना अनुज्ञेय नहीं है। इसी प्रकार इस न्यायालय ने वर्तमान में कल्याण सिंह (उपरोक्त) और ध्रुव गुर्जर (उपरोक्त) के मामले के निर्णय में यह राय दी है।

10. अब जहां तक नरिन्दर सिंह (उपरोक्त) के मामले का इस न्यायालय के निर्णय से संबंध है, इस न्यायालय ने पैराग्राफ 29.6 में स्वीकार किया है कि धारा 307 भा.द.सं. के तहत किया गया अपराध जघन्य और गंभीर अपराधों की श्रेणी में आएगा और इसलिये इन्हें समान्यतः समाज के विरूद्ध अपराध की तरह माना जाता है न कि अकेले व्यक्ति के विरूद्ध। यद्यपि, इस न्यायालय ने आगे अवलोकन किया कि उच्च न्यायालय अपने निर्णय को केवल इसलिए बहाल नहीं

करेगा क्योकि एफ.आई.आर. में धारा 307 का उल्लेख है या अन्य आरोप लगाया गया है। इसके आगे चिकित्सीय साक्ष्य या अन्य साक्ष्य के साथ सम्पोषण को देखा जाना, जो केवल परीक्षण के दौरान संभव है। नरिन्दर सिंह के मामले का निर्णय इस न्यायालय के वर्तमान निर्णय में अभियुक्तों के लिए कोई सहायक नही होगा।

11. अब जहां तक इस न्यायालय के शिजी (उपरोक्त) के मामले के निर्णय पर भरोसा करते हुए, एफ.आई.आर. को रद्द करते समय यह महसूस करते हुए कि फरियादी ने अभियुक्त के साथ समझौता किया है, वह दोषसिद्धि दर्ज करने की कोई संभावना नहीं है, और/या आगे का विचारण करने की प्रक्रिया निरर्थकता से संबंधित होगी, हमारी राय यह है कि उच्च न्यायालय ने उपरोक्त वर्णित आधार पर एफ.आई.आर. को रद्द करने में स्पष्ट रूप से भूल की है। ऐसा प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय ने इस मामलों के तथ्यों पर कथित निर्णय को गलत तरीके से पढ़ा या गलत तरीके से लागू किया है। उच्च न्यायालय को इस बात की सराहना करना चाहिए की प्रत्येक मामले में जहां फरियादी ने आरोपी के साथ समझौता कर लिया है, वहां कोई दोषी नहीं हो सकता है। ऐसे अवलोकन काल्पनिक है और कई बार राय देना जल्दबाजी है। वर्तमान प्रकरण में यह हो सकता है कि अभियोजन अभी भी ठोस साक्ष्य और अन्य गवाहों का परीक्षण कराकर दोषसिद्ध कर सकता है और सुसंगत साक्ष्य/वस्तु, अधिक विशेष रूप से जब विवाद एक वाणिज्यिक लेनदेन का नहीं है, और/या दीवानी प्रकृति, और/या एक निजी दोष नहीं है। शिजी (उपरोक्त) मामले में इस न्यायालय ने यह पाया कि मामले की उत्पत्ति पक्षकारों के मध्य दीवानी विवाद से हुई थी, जो विवाद उनके द्वारा हल कर लिया गया और इसलिए इस न्यायालय ने कहा कि, ''ऐसा होना, अभियोजन की निरंतरता, जहां फरियादी आरोपो का समर्थन करने के लिए तैयार नहीं है..... एक निरर्थक अभ्यास होगा जो किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं करेगा। उपरोक्त वर्णित मामले में यह भी महसूस किया गया 'कि यद्यपि दोनो कथित चश्मदीद गवाह फरियादी से निकट संबंधित थे हांलाकि वे अभियोजन संस्करण का समर्थन नहीं कर रहे थे' और इस न्यायालय ने महसूस और अभिनिर्धारित किया, 'कार्यवाहियों की निरंतरता एक खाली औपचारिकता के अलावा और कुछ नहीं है और द.प्र.सं. की धारा 482 के अंर्तगत ऐसी परिस्थितियों में उच्च न्यायालय द्वारा उचित रूप से न्याय की प्रक्रिया के दुरूपयोग को रोकने के लिए और जिसके द्वारा अधीनस्थ न्यायालयों की फिजूल प्रक्रिया को रोकने के लिए किया जा सकता है। उक्त निर्णय के पैराग्राफ 18 में निम्नलिखित रूप से यहा तक महसूस किया है :

''18. ऐसा कहने के बाद, हमें यह शीघ्रता से जोड़ना चाहिए कि द.प्र.सं. की धारा 482 के तहत अपने आप में प्रचुर शक्तियां है, यह उच्च न्यायालय के लिए अंत्यत सावधानी

और सतर्कता के साथ प्रयोग करने के लिए बाध्यकर बनाती है। शक्ति की विस्तृतता और प्रकृति स्वंय यह मांग करती है कि उच्च न्यायालय को इनका प्रयोग केवल अल्प रूप से और उन मामलों में करना चाहिए जिनके कारणों को लेखबद्ध कर इस स्पष्ट मत पर हो की अभियोजन की निरंतरता कानून की प्रक्रिया का एक दुरूपयोग मात्र के अलावा कुछ नहीं होगा। न तो यह हमारे लिए आवश्यक है और न ही उपयुक्त है कि उन स्थितियों का उल्लेख करें जिनमें धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग न्यायोचित हो सकता है। कुल मिलाकर हमें यह कहने की आवश्यकता है कि शक्ति का प्रयोग न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए होना चाहिए और केवल उन मामलों में जहां उस शक्ति का प्रयोग करने के इनकार से विधि की प्रक्रिया का दुरूपयोग होने का परिणाम हो सकता है। उच्च न्यायालय को हस्तक्षेप में इनकार करने को न्यायोचित ठहराया जा सकता है यदि उसे साक्ष्य के मूल्यांकन के लिए कहा जाये तो वह धारा 482 द.प्र.सं. के तहत याचिका से निपटने के दौरान एक अपीलीय न्यायालय की भूमिका ग्रहण नही कर सकता है उपरोक्त के अधीन, उच्च न्यायालय को यह ज्ञात करने के लिए प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करना होगा, क्या यह एक उचित मामला है जिसमें अंर्तनिहित शक्तियों को लागू किया जा सकता है।''

11.1 इसलिए उपरोक्त निर्णय ऐसे मामले में लागू हो सकता है जिसका मूल पक्षकारों केबीच सिविल विवाद है; पक्षकारो ने विवाद को सुलझा लिया है; कि अपराध व्यापक रूप से समाज के विरूद्ध नहीं है और/या उसी का सामाजिक प्रभाव नहीं हो सकता है; विवाद एक परिवार/वैवाहिक विवाद आदि है। पूर्वोक्त निर्णय उन मामलों में लागू नहीं हो सकता है जिनमें अभिकथित अपराध बहुत गंभीर और घोर अपराध है, जिनके धारा 307 भा.द.सं. के तहत अपराध जैसे सामाजिक प्रभाव होते है। इसलिए सुसंगत तथ्यों और परिस्थितियों पर उचित विचार किये बिना हमारे विचार में उच्च न्यायालय ने एफ.आई.आर. को यांत्रिक रूप से रद्द करने में तात्विक त्रुटि की है, यह अवलोकन करते हुए कि समझौते को ध्यान में रखते हुए, दोषसिद्धि अभिलिखित करने की कोई संभावना नहीं है और/या आगे का विचारण निरर्थता का एक प्रयोग होगा। उच्च न्यायालय ने शिजी (उपरोक्त) के मामले में, मामले के सुसंगत तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार किये बिना इस न्यायालय के पूर्वोक्त निर्णय पर यांत्रिक रूप से विचार किया है।

12. अब जहां तक नरिन्दर सिंह (उपरोक्त) और शम्भू केवट के निर्णयों के बीच पारस्परिक विरोध का सम्बध है, शम्भू केवट (उपरोक्त) के प्रकरण में इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय को धारा 482 द.प्र.सं. द्वारा प्रदत्त आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द करने की शक्ति और न्यायालय को धारा 320 द.प्र.सं. के अतंर्गत अपराधों का शमन करने की

प्रदत्त शक्ति से भिन्न है। उक्त निर्णय में, इस न्यायालय ने आगे अवलोकन किया कि अपराधों के शमन में, न्यायालय की शक्ति धारा 320 द.प्र.सं. के प्रावधानो द्वारा परिचालित होती है और न्यायालय को पूरी तरह से और स्पष्ट रूप से निर्देशित किया जाता है। जबकि, दूसरी और धारा 482 द.प्र.सं. के तहत आपराधिक परिवाद या आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा राय दिया जाना, अभिलेख सामाग्री द्वारा निर्देशित किया जाता है कि क्या ऐसी शक्ति के प्रयोग से न्याय के उद्देश्य की पूर्ति होगी, यद्यपि अंतिम परिणाम दोषमुक्ति या अभियोग का खारिज होना हो सकता है। यद्यपि, नरिन्दर सिंह (उपरोक्त) के पश्चातवर्ती निर्णय में, इसी पीठ ने पैरा 29 में अंतिम रूप से जैसा कि नीचे निष्कर्ष निकाला :–

''29. उपरोक्त चर्चा को दृष्टिगत रखते हुए, हम सरांशता और निम्नलिखित सिद्धांतों को प्रतिपादित करते है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय को मार्गदर्शित किया जाएगा पक्षकारों के मध्य हुए समझौते को उचित उपचार देने में और धारा 482 द.प्र.सं. के अंतर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए कार्यवाही को रद्द करते हुए और समझौते को स्वीकार करते हुए या समझौते को मानने से इनकार करते हुए आपराधिक कार्यवाहीयों के जारी रहने का निर्देश देगा।

29.1 द.प्र.सं. की धारा 482 के तहत प्रदत्त शक्ति को उस शक्ति से अलग किया जाना चाहिए जो न्यायालय को संहिता की धारा 320 के अंर्तगत अपराधों के शमन करने के लिए दी जाती है। निसंदेह संहिता की धारा 482 के अंर्तगत उच्च न्यायालय को उन मामलों में भी आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द करने की अंर्तनिहित शक्ति है जो शमनीय नहीं है, जहां पक्षकारों ने आपस में मामला सुलझा लिया है। हालांकि, इस शक्ति का प्रयोग संयम से और सावधानी के साथ किया जाना है।

29.2 जब पक्षकार निपटारे पर पहुंच गए हैं और उस आधार पर आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए याचिका दायर की जाती है, तो ऐसे मामलों मे मार्गदर्शक कारक (i) न्याय के उद्देश्य की पूर्ति के लिए या (ii) किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया का दुरूपयोग रोकने के लिए को सुरक्षित करना होगा।

उच्च न्यायालय को अपनी शक्ति का प्रयोग करते समय पूर्वोक्त दो उद्देश्यों में से किसी एक पर राय बनानी होती है।

29.3 ऐसी शक्ति का उन अभियोगों में प्रयोग नहीं किया जाना है जिनमें जघन्य और मानसिक अवसाद के गंभीर अपराध या अपराध जैसे हत्या, बलात्कार, डकैती इत्यादि शामिल है। ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं है और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते है। इसी प्रकार विशेष कानून के तहत कारित किये गए अभिकथित अपराध जैसे कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम या उस क्षमता में काम करते समय लोक

सेवकों द्वारा किए गए अपराध मात्र इस आधार पर रद्द नहीं किये जाने है कि पीड़ित और अपराधी के बीच कोई समझौता हो गया है।

29.4 दूसरी तरफ, उन आपराधिक मामलों में जो बड़े पैमाने पर और पूर्वव्यापी दीवानी प्रकृति के होते है, विशेष रूप से वे जो वाणिज्यिक संव्यवहार से उत्पन्न होते है या वैवाहिक संबंध से उत्पन्न होते है, या पारिवारिक विवादों को समाप्त किया जाना चाहिए, जब पक्षकारों ने अपने विवाद को आपस में खुद से हल कर लिया हो।

29.5 अपनी शक्तियों का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय को इस बात की जांच करनी है कि क्या दोषसिद्धि की संभावना दूरस्थ और धूमिल है और आपराधिक मामलों की निरंतरता अभियुक्तों को बहुत उत्पीड़न और पक्षपात में डालेगी और आपराधिक मामलों को समाप्त नहीं करने से उसके साथ अत्यधिक अन्याय होगा।

29.6 भा.द.सं. की धारा 307 के तहत अपराध जघन्य और गंभीर अपराधों की श्रेणी में आयेगें और इसलिए इन्हें आमतौर पर समाज के विरूद्ध अपराध माना जाता है और न कि केवल अकेले व्यक्ति के विरूद्ध। हांलाकि उच्च न्यायालय अपने निर्णय को केवल इसलिए बहाल नही करेगा क्योंकि एफ.आई.आर. में धारा 307 भा.द.सं. का उल्लेख है या इस प्रावधान के तहत आरोप तय किया गया है। उच्च न्यायालय को यह परीक्षण करने के लिए खुला रहेगा कि क्या धारा 307 भा.द.सं. को मात्र इसमें शामिल करने के लिए या अभियोजन पक्ष ने पर्याप्त साक्ष्य एकत्र किये है, जो यदि साबित हुआ, को धारा 307 भा.द.सं. के तहत आरोप साबित करने के लिए प्रेरित करेगा। इस प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय को यह खुला रहेगा, चोट लगने की प्रकृति के साथ जाए क्या इस तरह की चोट शरीर के महत्वपूर्ण/प्रतिनिधि भागों पर कारित की गई है, हथियारों की प्रकृति जो इस्तेमाल किये गये है, पीड़ित को कारित चोटों के संबंध में चिकित्सीय रिपोर्ट सामान्यतः मार्गदर्शक कारक हो सकते है। इस प्रथम दृष्टया विश्लेषण के आधार पर, उच्च न्यायालय इस बात की जांच कर सकता है कि क्या दोषी ठहराए जाने की प्रबल संभावना है या दोषी ठहराए जाने की संभावनाए दुरस्थ और धूमिल है। पूर्व मामले में यह निपटारे को स्वीकार करने से इनकार कर सकता है और आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द कर सकता है जबकि बाद के मामले में उच्च न्यायालय के लिए पक्षकारों के बीच पूर्ण निपटारा अभिवाक् समझौते पर आधारित अपराध को स्वीकार करने के लिए यह स्वीकार्य होगा। इस स्तर पर, न्यायालय को इस तथ्य से भी प्रभावित किया जा सकता है कि पक्षकारों के बीच समझौता करने से उनके बीच सदभाव हो सकता है जिससे उनके भविष्य के रिश्ते में सुधान हो सकता है।

29.7 संहिता की धारा 482 के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करना है या नही, यह तय करते समय निपटारे की

समय–सीमा एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। जिन मामलों का निपटारा कथित अपराध के तुरन्त बाद हो जाता है और मामला अन्वेषणाधीन है, उच्च न्यायालय आपराधिक कार्यवाही/जांच को रद्द करने के लिए समझौता स्वीकार करने में उदार हो सकता है। यह इस कारण से है कि इस स्तर पर जांच अभी भी जारी है और यहां तक की चार्जशीट भी पेश नहीं की गई है। इसी तरह, उन मामलों में जहां आरोप लगाया गया है लेकिन साक्ष्य को शुरू करना अभी बाकी है या साक्ष्य अभी भी प्रारंभिक अवस्था में है, उच्च न्यायालय अपनी शक्तियों को अनुकूल तरीके से उपयोग करने में उदारता दिखा सकता है, लेकिन ऊपर उल्लेखित परिस्थितियों/सामग्री का प्रथम दृष्टया मूल्यांकन करने के बाद। दूसरी ओर, जहां अभियोजन साक्ष्य लगभग पूर्ण है या प्रकरण साक्ष्य के निष्कर्ष के बाद तर्क की अवस्था पर है, आमतौर पर उच्च न्यायालय को संहिता की धारा 482 के तहत अपनी शक्तियों का प्रयोग करने से बचना चाहिए, जैसा कि ऐसे मामलों में विचारण न्यायालय मामले को गुणागूण पर निर्णित करने की स्थित में होगा और इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए कि क्या धारा 307 के तहत अपराध किया गया है या नहीं। इसी तरह, उन मामलों मे जहां दोषसिद्धि विचारण न्यायालय द्वारा पहले से ही दर्ज की जाती है और मामला उच्च न्यायालय के समक्ष अपील की अवस्था पर है, केवल पक्षकारों के बीच समझौता एक ही आधार को स्वीकार करने का आधार नहीं होगा जिसके परिणाम स्वरूप अपराधी को दोषमुक्त किया जायेगा जो कि विचारण न्यायालय द्वारा पहले से ही दोषसिद्ध किया गया है। यहां धारा 307 भा.द.सं. के तहत आरोप साबित हो जाता है और दोषसिद्धि पहले से ही जघन्य अपराध के रूप में दर्ज की जाती है ओर इसलिए, इस तरह के अपराध के लिए दोषी पाए गए अपराधी को बख्शने का कोई सवाल ही नहीं है।

13. विधि के बिंदु पर और इस न्यायालय के अन्य निर्णयों के बिंदुओं पर विचार करते हुए, उपरोक्त वर्णित से संबंधित, नीचे यह अवलोकन और अभिनिर्धारित किया गया है :

(i) कि संहिता की धारा 320 के अंर्तगत अशमनीय अपराधों के लिए संहिता की धारा 482 के अंर्तगत आपराधिक कार्यवाहियों को रद्द करने की प्रदत्त शक्ति का प्रयोग दीवानी स्वरूप के मामलों में जोरदार तरीके से और प्रबलता से किया जा सकता है, विशेषकर उनमें जो वित्तीय संव्यवहार से उत्पन्न हो या वैवाहिक संबंधों से उत्पन्न हो या पारिवारिक विवादों से उत्पन्न हो और जब पक्षकारों ने सम्पूर्ण विवाद आपस में सुलझा लिया है;

(ii) ऐसी शक्ति का प्रयोग उन अभियोगो मे नही किया जाता है जिनमें जघन्य और मानसिक भ्रष्टता के गंभीर अपराध शामिल है या अपराध जैसे हत्या, बलात्कार, डकैती आदि। ऐसे अपराध निजी प्रकृति के नहीं है और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते है;

(iii) इसी तरह से, ऐसी शक्ति का प्रयोग भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम जैसे विशेष कानून के अंर्तगत अपराधों में नही किया जाना चाहिए या लोक सेवक द्वारा अपने पदीय हैसियत में कोई अपराध किये जाने पर केवल इस आधार पर कि पीड़ित और अपराधी ने समझौता कर लिया है, रद्द नहीं किया जाना चाहिए;

(iv) धारा 370 भा.द.सं. और आयुध अधिनियम आदि के अंर्तगत अपराध जघन्य और गंभीर अपराधों की श्रेणी में आएंगे और इसलिए इन्हें समाज के विरूद्ध अपराधों की तरह माना जाता है और न केवल किसी अकेले व्यक्ति के विरूद्ध, और इसलिए, धारा 307 भा.द.सं. के अंर्तगत आपराधिक कार्यवाहियों और/या आयुध अधिनियम आदि जो समाज पर गंभीर प्रभाव डालते है, को संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति के प्रयोग में रद्द नहीं किया जा सकता है, इस आधार पर कि पक्षकारों ने अपने सम्पूर्ण विवाद को पारस्परिक सुलझा लिया है। यद्यपि, उच्च न्यायालय अपने निर्णय को मात्र इस कारण से बहाल नही करेगा कि एफ.आई.आर. में धारा 307 भा.द.सं. का उल्लेख है या इस प्रावधान के अंर्तगत आरोप विरचित किया जाता है। उच्च न्यायालय के लिए यह परीक्षण करना खुला होगा कि कहने मात्र के लिए धारा 307 भा.द.सं. को शामिल करे या अभियोजन ने पर्याप्त साक्ष्य एकत्रित कर लिया है, जो यदि साबित होता है, तो धारा 307 भा.द.सं. के अंर्तगत आरोप विरचित करने को अग्रसर होगे। इस प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय के लिए कारित चोट की प्रकृति पर जाना खुला होगा, क्या ऐसी चोट शरीर के नाजुक/मुख्य भाग पर पहुंचाई गई है। हथियारों की प्रकृति से जो उपयोग किये गये है आदि। हांलाकि उच्च न्यायालय द्वारा ऐसा प्रयोग करना केवल तब अनुज्ञेय होगा जब अन्वेषण के उपरांत साक्ष्य एकत्रित कर लिए जाते है और आरोप पत्र दायर कर दिया जाता है/आरोप विरचित कर दिया जाता है और/या विचारण के दौरान। ऐसा प्रयोग अनुज्ञेय नहीं है जब मामला अन्वेषण के अधीन है। इसलिए, इस न्यायालय के नरिन्दर सिंह (उपरोक्त) के मामले के पैरा 29.6 और 29.7 के अंतिम निष्कर्ष को सांमजस्यपूर्ण पढ़ा जाना चाहिए और सम्पूर्ण की तरह पढ़ा जाए और ऐसी परिस्थितियों में जो ऊपर वर्णित है;

(v) अशमनीय अपराधों के संबंध में आपराधिक कार्यवाहियों को समाप्त करने की संहिता की धारा 482 के तहत शक्ति का प्रयोग करते समय, जो निजी प्रकृति की है और जिसका समाज पर गंभीर प्रभाव नहीं पड़ता है, इस आधार पर कि पीड़ित और अपराधी के बीच निपटारा/समझौता हो गया है, उच्च न्यायालय को अभियुक्त के पूर्वपद पर विचार करना आवश्यक है; अभियुक्त का आचरण, अर्थात, क्या अभियुक्त फरार था और वह फरार क्यो था, उसने फरियादी को समझौता आदि करने के लिए कैसे तैयार किया था। ''(स्त्रोत

2019HINpdf)"

12. उपरोक्त उल्लेखित निर्णय को ध्यानपूर्वक पढ़ने से यह स्पष्ट है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत समझौते के आधार पर किसी अशमनीय अपराध या अपराधो का शमन, एवं समस्त दाण्डिक कार्यवाही को निरस्त करने से पूर्व निम्न बिन्दुओ पर विशेष ध्यान रखकर ही निर्णय लेना सुनिश्चित करना चाहिये।

(क) ऐसे प्रकरणो मे उच्च न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के द्वारा प्रदत्त अंतनिहित शक्ति का प्रयोग संयम से और सावधानी पूर्वक करना चाहिये तथा इस शक्ति का प्रयोग यांत्रिक रूप में नहीं किया जाना चाहिये।

(ख) ऐसे प्रकरणो मे उच्च न्यायालय को वाद मे तथ्यो व परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए अंतनिहित शक्ति के निम्न उद्देश्यो मे से किसी एक पर राय बनानी चाहिये। (i) न्याय के उद्देश्य की पूर्ति के लिए व (ii) किसी भी न्यायालय की प्रक्रिया का दुरूपयोग रोकने के लिए एवं उसके उपरान्त ही उक्त शक्ति का प्रयोग करना चाहिये।

(ग) ऐसे अपराध जो गंभीर हो, निजी प्रकृति के नही हो और समाज पर गंभीर प्रभाव डालते हो, या विशेष कानून में अभिकथित अपराध हो तो, ऐसे अपराधों की दाण्डिक प्रक्रिया सामान्यतः आपसी समझौते के आधार पर निरस्त नही किया जाना चाहिये।

(घ) यह भी विचारणीय रहेगा कि अभियुक्त का पूर्वपद व आचरण क्या रहा व उसने फरियादी व पीड़िता को समझौता करने के लिए कैसे तैयार किया। समझौते की समय सीमा भी एक महत्वपूर्ण कारक

रहेगा।

(ङ) इस बात की जॉच भी कर लेनी चाहिए कि क्या दोष सिद्धि की संभावना दूरस्थ और धूमिल है।

13. प्रस्तुत वाद मे ऊपर वर्णित विषयो के अतिरिक्त एक और विषय है जो बहुत विचारणीय है कि पीड़िता नाबालिग है व समझौता उसके पिता ने किया है। तो क्या भविष्य में इस समझौते का पीड़िता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव तो नही होगा।

14. वर्तमान मामले मे अभियुक्त पर निम्न अपराधो में मुकदमा दायर किया है।

धारा 354, भारतीय दंड संहिता :– यदि कोई व्यक्ति किसी महिला की मर्यादा को भंग करने के लिए उस पर हमला या जोर जबरदस्ती करता है तो उस पर आईपीसी की धारा 354 लगाई जाती है जिसके तहत आरोपी पर दोष सिद्ध हो जाने पर दो साल तक की कैद या जुर्माना या फिर दोनो की सजा हो सकती है।

धारा 7, अधिनियम 2012 :– जो कोई, लैंगिक आशय से बालक की योनि, लिंग, गुदा या स्तनों को स्पर्श करता है या बालक से ऐसे व्यक्ति या किसी अन्य व्यक्ति की योनि, लिंग, गुदा या स्तन का स्पर्श कराता है या लैंगिक आशय से ऐसा कोई अन्य कार्य करता है जिसमें प्रवेशन किए बिना शारीरिक संपर्क अंतर्ग्रस्त होता है, लैंगिक हमला करता है, यह कहा जाता है।

धारा 8, अधिनियम 2012 :– जो कोई, लैंगिक हमला करेगा वह दोनों मे से किसी भांति के कारावास से जिसकी अवधि तीन वर्ष से कम की नहीं होगी किन्तु जो पांच वर्ष तक की हो सकेगी, दंडित किया

जाएगा और जुर्माने से भी दंडनीय होगा।

दं. प्र. सं. 1973 की धारा 320 की तालिका के अनुसार धारा 354 भा. द.सं. में वर्णित अपराध एक शमनीय अपराध है। परन्तु लैंगिग अपराधो से बालको का संरक्षण अधिनियम 2012 मे विचिरित अपराध अशमनीय है।

15. वर्तमान आवेदन के निस्तारण के लिए लैंगिग अपराधो से बालको का संरक्षण अधिनियम 2012 का उद्देश्य भी उल्लेखनीय है। जो निम्न है :–

''लैगिंक हमला, लैंगिक उत्पीड़न और अश्लील साहित्य के अपराधों से बालकों का संरक्षण करने और ऐसे अपराधों का विचारण करने के लिए विशेष न्यायालयों की स्थापना तथा उनसे संबंधित या आनुषंगिक विषयों के लिए उपबंध करने के लिए अधिनियम।''

16. भारत में सामान्तया बालकों पर होने वाले लैंगिक अपराधो की घटनाओ को छुपाया जाता है, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्र में घटने वाली घटनाये को। ऐसा देखा गया है कि पिडिता के परिवार की समाज में बेज्जती न हो, इस कारण से ऐसी घटनाओं पर परदा डाल दिया जाता है या छुपाया जाता है, जिसका सीधे तरह से मनोविज्ञानी असर पीड़ित या पिड़िता पर आता है। ऐसा होना दुभाग्यपूर्ण है।

17. वर्तमान प्रकरण में, उपरोक्त निर्धारित वैधानिक माप दण्डो को लागू करने पर निम्न निष्कर्ष आता है।

(i) लैंगिग अपराधो से बालको का संरक्षण अधिनियम 2012 की धारा 7 एवं 8 में वर्णित अपराध निजी प्रकृति के नही है, बल्कि ये अपराध समाज के विरूद्ध है। ऐसे अपराध इस नाते

संगीन अपराध की श्रेणी में आते है।

(ii) वर्तमान परिस्थितियों में यह नही कहा जा सकता कि परीक्षण (ट्रायल) ने अन्त में अपराधी की दोष सिद्धि की संभावना धूमिल है।

(iii) लैगिंग अपराध से बालको का सरंक्षण अधिनियम 2012 एक विशेष अधिनियम है जिसका उद्देश्य भी विशिष्ठ है कि *''संविधान के अनुच्छेद 15 का खंड (3), अन्य बातों के साथ राज्य को बालकों के लिए विशेष उपबंध करने के लिए सशक्त करता है;*

संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा अंगीकृत बालकों के अधिकारों से संबंधित अभिसमय को, जो बालक के सर्वोत्तम हितों को सुरक्षित करने के लिए सभी राज्य पक्षकारों द्वारा पालन किए जाने वाले मानकों को विहित करता है, भारत सरकार ने तारीख 11 दिसम्बर, 1992 को अंगीकृत किया है;

बालक के उचित विकास के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उसकी निजता और गोपनीयता के अधिकार का सभी प्रकार से तथा बालकों को अंतर्वलित करने वाली न्यायिक प्रक्रिया के सभी प्रक्रमों के माध्यम से संरक्षित और सम्मानित किया जाए;

यह अनिवार्य है कि विधि ऐसी रीति से प्रवर्तित हो कि बालक के अच्छे शारीरिक, भावात्मक, बौद्धिक और सामाजिक विकास को सुनिश्चित करने के लिए प्रत्येक प्रक्रम पर बालक के सर्वोत्तम हित और कल्याण पर सर्वोपरि महत्व के रूप में ध्यान

दिया जाए;

बालक के अधिकारों से संबंधित अभिसमय के राज्य पक्षकारों से निम्नलिखित का निवारण करने के लिए सभी समुचित राष्ट्रीय, द्विपक्षीय या बहुपक्षीय उपाय करना अपेक्षित है–

(क) किसी विधिविरूद्ध लैंगिक क्रियाकलाप में लगाने के लिए किसी बालक को उत्प्रेरित या प्रपीड़न करना;

(ख) वेश्यावृत्ति या अन्य विधिविरूद्ध लैंगिक व्यवसायों में बालकों का शोषणात्मक उपयोग करना;

(ग) अश्लील गतिविधियों और सामग्रियों में बालकों का शोषणात्मक उपयोग करना;

बालकों के लैंगिक शोषिण और लैंगिक दुरूपयोग जघन्य अपराध हैं, और उन पर प्रभावी रूप से कार्रवाई करने की आवश्यकता है।''

पारस्परिक समझौते के आधार पर दांडिक कार्यवाही को रद्द करना, इस प्रक्रिया को आकस्मिक मृत्यु देना जैसा होगा व उपरोक्त उद्देश्य की भावना से विपरीत भी होगा। ऐसा करना किसी भी प्रकार से न्याय के उद्देश्यो की प्रप्ति को सुनिश्चित करना नही हो सकता है।

(iv) वर्तमान मुकदमे के संदर्भ में अभिभावक द्वारा पीड़िता की ओर से समझौता करना भी एक नकारात्मक पहलू है।

18. वर्तमान वाद के तथ्यो, कानूनी पहलू, विधिक निर्णयो, संलग्न प्रपत्रो व विद्वान अधिवक्ताओ के कथनो व उपरोक्त चर्चा का गहन

अध्ययन के बाद मै इस निष्कर्ष पर पहुॅचा हूॅ कि वर्तमान तथ्यो व परीस्थितियो में पारस्परिक समझौते के आधार पर अभियुक्त के विरूद्ध संस्थित दाण्डिक कार्यवाही को रद्द करना न्यायोचित नही है। अतः वर्तमान वाद में दाण्डिक प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अंतर्गत प्राप्त अंतनिहित शक्ति का प्रयोग करना न्याय के हित में व न्यायसंगत नही है।

19. अतः वर्तमान आवेदन निरस्त करने योग्य है, तदनुसार ***निरस्त*** किया जाता है।

दिनांक –23.10.2019

A. Dewal

(न्यायमूर्ति सौरभ श्याम शमशेरी)